Nāsadīyam
A Multi-Disciplinary National Research Journal (Annual)
Peer Reviewed/Refereed
Available online at: https://nasadiyam.dmmkkr.ac.in/
Volume 3, Issue 1 (Jan – Dec), 2024, Pp 9-16

# ललित निबंधकार विद्यानिवास मिश्र की मिथकीय चेतना

डॉ. आरती अग्रवाल
सहायक प्रवक्त्री (हिन्दी विभाग)
दयानन्द महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत
ईमेलः- artiaggarwal15324@gmail.com
दूरभाषः 7015102723

**संक्षेपिका**

मिथक किसी भी देश, काल एवं जाति का पौराणिक इतिहास है, जो आदिमानव को आज के मानव से जोड़ता है। दोनों के मध्य सेतु का काम करता है। यह अलौकिक पात्र एवं घटनाओं से संबंधी ऐसा कथा रूप होता है, जो समाज विशेष द्वारा पूरे विश्वास से अपनाया जाता है और परम्परा का रूप में यह पीढ़ियों तथा सदियों तक प्रचलित रहता है। वस्तुतः इन मिथक कथाओं का संबंध मानव के साथ निरंतर बना रहा है। यह मनुष्य की वह आदिम चेतना है, जो अनादि काल से मनुष्य के अंतर्मन में कुंडली मारे बैठी है। संक्षेप में कह सकते हैं कि ये मिथक उतने ही प्राचीन हैं, जितनी स्वयं मानव-जाति। सृष्टि के प्रारंभ से ही जब से मनुष्य में सोचने-समझने की शक्ति उत्पन्न हुई, तब से ही इन मिथक कथाओं ने जन्म लेना आरंभ कर दिया। जब मनुष्य ने सोचा कि मैं कौन हूँ? क्यों इस दुनिया में आया हूँ या मुझे रचने वाला कौन है? इस संपूर्ण सृष्टि का रचयिता कौन है? जैसे अनेकानेक प्रश्नों ने ही उसे मिथक संसार में प्रवेश कराया। मानवीय चिंतन में अपने अस्तित्व से परे किसी दूसरी परा-चेतना के अस्तित्व की यही धारणा समस्त मिथक कल्पनाओं का आधार बनी। भारतीय चिंतन में सृष्टि की व्युत्पत्ति, विकास और विनाश की अभिव्यक्ति भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मिथकीय संकल्पना में हुई है। जन्म, विकास, मृत्यु, प्रकृति परिवर्तन, नवसृजन आदि अनेक अवस्थाएँ सृष्टि-चक्र का नियम हैं। अतः इस संपूर्ण सृष्टि को और उसके अंतर्निहित अनगिनत रहस्यों को समझने के लिए ही मानव चेतना ने मिथक रचे।

**कुंजी शब्द** - आप्तवचन- पौराणिक स्त्रोतो से प्राप्त वचन, एकात्मय-आत्मा के स्तर पर एक होना, अनुस्यूत-युक्त

**शोधपत्र**

मिथक अंग्रेजी के 'मिथ' शब्द का हिंदी पर्याय है और अंग्रेजी का मिथ शब्द यूनानी भाषा के 'माइथॉस' से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है 'आप्तवचन' अथवा 'अतर्क्य कथन'। अरस्तु ने कथा-विधान (फेबिल) के अर्थ में इसका प्रयोग किया है। हिंदी में मिथ के लिए 'कल्पकथा', 'पुराकथा' आदि अन्य शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। संस्कृत में इसके निकटवर्ती दो शब्द हैं : एक 'मिथस्' या मिथ : जिसका अर्थ है-परस्पर और दूसरा मिथ्या, जो असत्य का वाचक है। यदि मिथक का संबंध 'मिथस्' से स्थापित किया जाए तो इसका अर्थ हो सकता है-सत्य और कल्पना का परस्पर-अभिन्न संबंध अथवा एकात्मय 'मिथ्या' से संबंध जोड़ने पर 'मिथक' का अर्थ 'कपोलकथा' बन जाता है। इसलिए सामान्य रूप से मिथक का अर्थ माना जाता है कि ऐसी परम्परागत कथा, जिसका संबंध अतिप्राकृत घटनाओं और भावों से होता है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी व्याख्या कुछ इस प्रकार की है, "मिथक शब्द का प्रयोग देवी-देवताओं अथवा अतिप्राकृत पात्रों और मानव-जीवन के अनुभव से परे किसी (सुदूर) काल की असाधारण घटनाओं एवं परिस्थितियों से सम्बद्ध आख्यानों के लिए होता है।[1] "अतः मिथक धार्मिक विश्वास का अंग होता है, जिसके मूल में अतर्क्य विश्वास की भूमिका रहती है, जो न विशुद्ध रूप में तथ्यों पर आधारित होती है और न ही

कल्पना पर बल्कि उसमें तथ्य तथा कल्पना के समन्वय की चेष्टा रहती है। डॉ. रमेश कुंतल मेघ के विचारानुसार इस संदर्भ को कुछ इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है, "मिथक मनुष्य का आदिम काव्य है। मिथों के निर्माण में सामूहिक चेतना काम करती है। मनुष्य के संस्कार में विद्यमान ये मिथक आस्था एवं श्रद्धा के आधार स्तम्भों पर खड़े रहते हैं, तर्क के प्रवेश मात्र से वे भराभराकर गिर पड़ते हैं। 'मिथक' की यथार्थता ऐतिहासिक न होकर पुनीत होती है। } मिथक की यह पुनीत यथार्थता उसे तर्कपूर्ण चिंतन में अनुस्यूत करती है। इसलिए मिथक की अंतर्भूमि चिंतन न होकर अनुभूति है।[2]

इस प्रकार मिथक किसी भी देश, काल एवं जाति का पौराणिक इतिहास है, जो आदिमानव को आज के मानव से जोड़ता है। दोनों के मध्य सेतु का काम करता है। यह अलौकिक पात्र एवं घटनाओं से संबंधी ऐसा कथा रूप होता है, जो समाज विशेष द्वारा पूरे विश्वास से अपनाया जाता है और परम्परा का रूप में यह पीढ़ियों तथा सदियों तक प्रचलित रहता है। वस्तुतः इन मिथक कथाओं का संबंध मानव के साथ निरंतर बना रहा है। यह मनुष्य की वह आदिम चेतना है. जो अनादि काल से मनुष्य के अंतर्मन में कुंडली मारे बैठी है। संक्षेप में कह सकते हैं कि ये मिथक उतने ही प्राचीन हैं, जितनी स्वयं मानव-जाति। सृष्टि के प्रारंभ से ही जब से मनुष्य में सोचने-समझने की शक्ति उत्पन्न हुई, तब से ही इन मिथक कथाओं ने जन्म लेना आरंभ कर दिया। जब मनुष्य ने सोचा कि मैं कौन हूँ? क्यों इस दुनिया में आया हूँ या मुझे रचने वाला कौन है, इस संपूर्ण सृष्टि का रचयिता कौन है? जैसे अनेकानेक प्रश्नों ने उसे मिथक संसार में प्रवेश कराया। मानवीय चिंतन में अपने अस्तित्व से परे किसी दूसरी परा-चेतना के अस्तित्व की यही धारणा समस्त मिथक कल्पनाओं का आधार बनी। भारतीय चिंतन में सृष्टि की व्युत्पत्ति, विकास और विनाश की अभिव्यक्ति भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मिथकीय संकल्पना में हुई है। जन्म, विकास, मृत्यु, प्रकृति, परिवर्तन, नवसृजन आदि अनेक अवस्थाएँ सृष्टि-चक्र का नियम हैं। अतः इस संपूर्ण सृष्टि को और उसके अंतर्निहित अनगिणत रहस्यों को समझने के लिए ही मानव चेतना ने मिथक रचे। इस संदर्भ में मिश्र लिखते हैं, "मनुष्य ने उषःकाल की ललाई को, जो सूर्योदय के पहले आती है, इस रूप में देखा कि एक नई बहू आ रही है, उनके पीछे-पीछे दूल्हा आ रहा है तो उषःकाल के साथ उनका एक रागात्मक संबंध स्थापित हुआ। उससे उषःकाल का आना एक पूर्णतर घटना के रूप में प्रत्यक्ष होता है। अपने बीच के आत्मीय संबंधों में जो बहू के आने पर होता, उसी के रूप में उसको देखा। एक नए अभ्युदय की आवाई के रूप में देखा। सूर्या का सूर्य से विवाह का यह मिथक उस मनुष्य द्वारा प्रकृति को समझने का अच्छा प्रयत्न है, क्योंकि वह केवल उस प्रयत्न को ही नहीं समझता, बल्कि उस प्रयत्न से अपने को संयोजित भी करता है। इसी के द्वारा वह घटना याद रहती है। जातीय चेतना में वह अंकित रहती है। सोचा जाता है कि इसमें कुछ-न-कुछ इतिहास की प्रामाणिक सामग्री भी है। मैं समझता हूँ इसमें इतिहास की प्रामाणिक सामग्री हो या न हो, लेकिन मनुष्य की विश्व समझदारी की प्रामाणिक सामग्री अवश्य है। मनुष्य ने विश्व को कैसे समझा और कैसे अपनी समझ को और अधिक पूर्णतर बनाया है, इसका अभिलेख हमारा मिथक विस्तार या पुराण ही है"।[3] इस प्रकार मिश्र की दृष्टि में ये मिथक मानव जीवन में नए अर्थ, नई प्रेरणा और नई आशा का संचार करते हैं। ये मनुष्य को प्राकृतिक रहस्यों को और आधिभौतिक सत्यों को समझने की तथा उनसे भावनात्मक संबंध स्थापित करने की समझ प्रदान करते हैं।

प्रायः मिथक अपनी अप्राकृत एवं अलौकिक प्रकृति के कारण अनुश्रुति एवं कल्पना पर आधारित होते हैं। कल्पना प्रसूत होने पर भी इनकी प्रतीति सदैव सत्य रूप में ही होती है और इसीलिए निरंतर ये मानव जीवन के लिए पूर्णतया सार्थक एवं प्रासंगिक बने रहते हैं। चिरकाल से ही मिथकों का अंतर्निहित सत्य और गंभीर जीवन

दर्शन अपने प्रेरक प्रसंगों के रूप में मानवीय चेतना का परिष्कार, विस्तार एवं मार्गदर्शन करते आ रहे हैं। भारतीय मिथकों पर विशेषतः रामायण, महाभारत और श्रीमदभागवत पर यह बात पूर्णतः लागू होती है। राम की सत्यसंधता, युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठता तथा श्रीकृष्ण की कर्मयोग की शिक्षा भारतीय ही नहीं समस्त विश्व के लोगों के जीवन में कितनी महत्त्वपूर्ण है यह सर्वविदित है। इसलिए प्रत्येक युग के साहित्य में इन मिथकों का खूब दोहन हुआ है। डॉ. रतनकुमार पांडेय के अनुसार, "मिथक और साहित्य का सम्वाद एक निरंतर सम्वाद है, क्योंकि साहित्य ही मिथक को नया अर्थ देता है, उन्हें भिन्न रचनात्मक आशय प्रदान करता है। मिथक किसी भी संस्कृति का ऊपरी ढाँचा नहीं है, वरन् उसकी आंतरिक संरचना का अभिन्न अंग है, व्यक्ति और समाज इन मिथकों को केवल व्यवस्था ही नहीं देता है बल्कि उन्हें भिन्न भिन्न अर्थ संदर्भ प्रदान करता है।" यही कारण है कि वैदिक काल से लेकर अब तक भारतीय साहित्य नित नई-नई कल्पनाओं के आधार पर, नई संचेतना के साथ नए-नए रूपों में मिथकों की रचना करता आ रहा है। चाहे वैदिक काल का साहित्य हो, वाल्मीकि-व्यास की रामायण-महाभारत हो, तुलसी का 'राम चरित मानस' हो, प्रसाद की 'कामायनी' हो या फिर मिश्र का रचना-संसार हो, युगों-युगों से यह मिथक परम्परा अब तक नदी की भाँति सतत प्रवहमान है। प्रत्येक युग के रचनाकार ने अपनी बुद्धि और विचारधारा के अनुरूप इन्हें समझा और अपनी मौलिक उद्भावनाओं के आधार पर इन्हें गढ़ा। इतना ही नहीं ज्ञान-विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में भी बुद्धिजीवियों ने इन मिथकों के ज्ञान-रस का पान किया और रामायण के पुष्पक विमान से तथा महाभारत के संजय की दूरदृष्टि से प्राप्त मिथकीय चेतना को क्रमशः आधुनिक हवाई जहाज तथा दूरदर्शन यानि टेलीविजन की कल्पना के रूप में साकार किया। इसी बिंदु पर आकर ये मिथकीय कल्पनाएँ यथार्थ का रूप धारण कर लेती है।

जैसे श्रीकृष्ण के जीवन से जुड़ी विभिन्न पौराणिक कथाओं के आधार पर मिश्र पाठक के समक्ष जीवन के उच्च आदर्शों को प्रतिष्ठापित करते हैं। वे लिखते हैं। "कृष्ण सांदीपनि के आश्रम में पढ़ने गए तो उन्हें कठिन जीवन जीना पड़ा। दूर जंगल से लकड़ियाँ लानी होती थीं। फल लाने होते थे और कभी-कभी रात हो जाती थी। ऐसा ही एक दिन था कि राह खो गयी, शाम घिर गयी, बादल घिर आए और घनघोर वर्षा होने लगी। कृष्ण के 'सखा सुदामा' के पास थोड़े से चने थे, पर उन्हें संकोच था कि चोरी से ही सही पर माखन से जिसकी देह बनी हो उसे कच्चे चने कैसे दें। चने उन्होंने दिए नहीं और श्रीकृष्ण भूखे रह गए। सुदामा को उस समय ध्यान नहीं था कि श्रीकृष्ण मुझसे चने नहीं माँग रहे हैं, मेरी दरिद्रता माँग रहे हैं। हाय रे दरिद्र मन, तुझ से दरिद्रता भी नहीं दी जाती। श्रीकृष्ण दरिद्रता का जहर पीना चाहते थे, हीनता का जहर पीना चाहते थे"।[4] दूसरी कथा है युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की, जिसमें किसी ने भंडारे का भार लिया, किसी ने विशेष सम्मानित अतिथियों के स्वागत-सत्कार का, किसी ने यज्ञ की व्यवस्था का, पर कृष्ण ने अपने लिए चुना जूठी पत्तल बटोरने का कार्य। वे जूठी पत्तल बटोरकर ब्राह्मणों, क्षत्रियों और समृद्ध वैश्यों के समाज के जहर को उस जूठन की गंध के साथ पी जाना चाहते थे। तीसरी कथा है-एक बार भोजन समाप्त होने पर दुर्योधन के भड़काने पर वनवास में पांडवों के पास दुर्वासा ऋषि आए और कहा कि मुझे भूख लगी है और साथ में दस हजार शिष्य हैं, उन्हें भी भूख लगी है, हमें भोजन दो। पांडवों की गृहलक्ष्मी काँप उठी-कैसे गृहस्थ धर्म का आज निर्वाह होगा। फिर उसने पूर्ण विश्वास के साथ अपने अंतरंग सखा अर्थात् कृष्ण को पुकार लगायी (वास्तव में यह सखा या मित्र सबके अंतर्मन में वास करता है, आवश्यकता है तो केवल सच्चे मन से आवाज देने की, वह दौड़ा दौड़ा चला आता है।) कृष्णा अपने मित्र को स्मरण कर रही थी, वे (कृष्ण) आ गए। बोले, मुझे भी भूख लगी है। द्रौपदी बोली, एक संकट तो मैंने अभी-अभी टाला है और अब तुम आ गए। पर कृष्ण

नहीं माने, बोले-तुम झूठ बोलती हो, तुम्हारी रसोई में भोजन न हो, यह संभव नहीं। रसोईघर में गए। बर्तन में लगी साग की जलांध खुरच कर उन्होंने तृप्ति पायी और दस हजार शिष्यों के साथ दुर्वासा ऐसे तृप्त हो गए कि उन्हें डकार आने लगी, बहुत आशीर्वाद द्रौपदी को देकर वे वहाँ से गए।"[5] इस प्रकार कृष्ण दुर्वासा का क्रोध उनके तप का अहंकार और दुर्योधन की कूटनीति-इन सबका विष जलांध के साथ पी गए। मिश्र द्वारा वर्णित उपर्युक्त तीनों कथाओं का भाव है कि मानवात्मा को प्रत्येक परिस्थिति में परमात्मा पर अटूट विश्वास एवं सच्ची निष्ठा रखनी चाहिए। यदि मनुष्य अपनी समस्त चिंताओं को परमात्मा के प्रति समर्पित कर दे तो उसके जीवन की डोर को स्वयं परमात्मा अपने हाथों में थाम लेता है और उसका उद्धार करता है। कभी सेवक बनकर, कभी सखा बनकर, तो कभी भक्त का भी भक्तवत्सल बनकर उसकी समस्त इच्छाओं की पूर्ति करता है। मिश्र के मतानुसार श्रीकृष्ण से संबंधी मिथक प्रत्येक भारतीय जन के स्वाँस-स्वाँस में लीन है। "हमारी निरक्षर या अर्द्ध-निरक्षर ग्रामीण जनता कृष्ण का ध्यान कजली या होली आदि उत्सवों में प्रत्यक्ष उपस्थिति के रूप में करती है, केवल किसी पूर्व पुरुष या किसी जातीय अतीत इतिहास-नायक के रूप में नहीं या ऐतिहासिक घटनाओं से उभरे हुए व्यक्तित्व मात्र नहीं है। वे एक महान जाति की सृजनात्मक कल्पना और गहनतम भावनाओं के चरम उत्कर्ष है। यदि हम विनम्रतापूर्वक हिसाब भी लगायें तो कम-से-कम साढ़े तीन या चार हजार वर्षों का हमारा इतिहास जिस एक व्यक्ति की फूंक से प्राणान्वित है-वह है भगवान श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण से हमारा सीधा संबंध है, उन्हें उलाहना देने का, उनसे नाराज होने का, उन्हें दुलारने का, उन्हें प्यार से बुलाने का हमें अधिकार है और इस अधिकार पर हम गर्व करते हैं। ये हमारे भाव-पुरुष हैं, उनकी लीला हमारे भाव-जगत् में घटती ही रहती है, कभी उसका विराम नहीं होता। यही नहीं जीवन का कोई भी ऊर्जात्मक पक्ष नहीं है, जो सोलह उला सम्पन्न श्रीकृष्ण में पूर्ण रूप से अभिव्यक्त न हुआ हो।"[6] इसलिए मिश्र ने भी अपने अधिकांश निबंध-संग्रहों में श्रीकृष्ण के माखनचोर, बनवारी, गिरधारी, मुरारी, कालिय मर्दन, चितरंजन, यशोदा-नंदन और न जाने कितने रूपों की लालित्यपरक व्याख्या की है। मिश्र को इस भुवनमोहन विश्वात्मा की छवि अपने अद्भुत प्रकाश के साथ न केवल मानसिक ऊर्जा प्रदान करती है, बल्कि असीम माधुर्य के साथ उन्हें भाव-प्रवण भी बनाती है। तभी वे कहते हैं, "ये मिथक रचे जाते रहें तो हम भी भाव-प्रवण बने रहें।"[7] यह ब्रज के लाला का ही प्रताप है, उसका इस संस्कृति को सबसे बड़ा अवदान है-सबके भीतर यह भाव भरने का कि हम ग्वाल-बालों की तरह सामान्य और सहज हो जाएँ, हम ब्रज की रज के समान विनम्र हो जाएँ, हम करील के कुंज हो जाएँ अर्थात् सर्वभूतात्मभाव से भर जाएँ, विशिष्ट न रहें, सामान्य बन जाएँ, यही सबसे बड़ा आकर्षण है। इससे लोग कहाँ-कहाँ से नहीं खिंचे। हिंदू-हिंदू नहीं रहा, मुसलमान मुसलमान नहीं रहा, गुजराती-गुजराती न रहा, बंगाली बंगाली न रहा, पंजाबी पंजाबी न रहा। सब लाला के और लाडली के सगे रिश्तेदार। इस संस्कृति का यह भाव दही की तरह अपने परिणत रूप में साहित्य में आया। पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण सभी दिशाएँ उस विराट भाव में एक हो गई। इस विराटता के अपनेपन में जातीय संकीर्णता का समस्त परायापन धुल गया और समाजवाद का प्रथम प्रवर्तन हुआ। इस प्रकार श्रीकृष्ण संबंधी मिथकों को मिश्र ने अपने निबंधों में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त किया है

मिश्र मिथकों को मानवीय सर्जनशीलता का महत्वपूर्ण आयाम मानते हैं। उनका मानना है कि मिथकों के बिना सृजक की सर्जना कुंठित हो जाती है, रचनाशीलता चूक जाती है, संस्कृति संबंधी चिंतन भी चूक जाता है। जहाँ ये मिथक कुछ खोजने के लिए रचनाकार की शोधात्मक पद्धति को उकसाते रहते हैं, वहीं उसकी कल्पना शक्ति को विस्तृत फलक भी प्रदान करते हैं। इस विषय में मिश्र लिखते हैं, "मिथक निरंतरता का अनुसंधान है,

निरंतर समग्रतर होने की या करने की, न चूकने वाली प्रक्रिया है। साहित्य में इतिहास भी मिथक में रूपांतरित होकर आता है या कहें, मिथक के मुकुर में परादृश्य होकर आता है।... साहित्य मिथक तो नया रचता है, पुराने को संवारता है; पर वह इतिहास के तथ्य को विकृत करने का अधिकार नहीं पाता, सिर्फ इसलिए कि वह साहित्य होने के नाते स्वयंभू है। इन मिथकों के झरोखे से मानव स्वभाव और उस स्वभाव की स्वाभाविक परिणति की संवेदना पहचानी जाती है। वहाँ इतिहास दृश्य नहीं है, वह दृश्य का चौखटा है।[8] इसी चौखटे में रचनाकार पुरानी कथाओं को अपने ढंग से 'फिट' करता है और उसे नया रूप नया, सौंदर्य प्रदान कर प्रस्तुत करता है। मिश्र द्वारा विरचित कई निबंध संग्रहों में यह तथ्य लालित्य पूर्ण रूप में अवलोकनीय है। जैसे-'जसुदा के नंदन', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'राधा, माधव रंग रंगी', 'महाभारत का काव्यार्थ' आदि। मिश्र मिथक को इतिवृत्त की पुनर्व्याख्या भी कहते हैं। क्योंकि इतिवृत्त में जहाँ इतिहास परम्परा रूप में विद्यमान रहता है, वहीं भविष्य संभावना के रूप में नियोजित होता है। जैसे रामायण और महाभारत के आधार पर कितने नाटक, कितने काव्य लिखे गए, पर प्रत्येक समर्थ रचनाकार ने इन मिथकों की पुनर्व्याख्या की। पुनर्व्याख्या करते समय कुछ-न-कुछ नई बात जोड़ी, क्योंकि बिना उसके पुनर्व्याख्या हो नहीं सकती थी, एक अखंड अर्थ उद्बोधित नहीं हो सकता है। मिश्र इसे स्पष्ट करने के लिए भवभूति की उत्तररामचरित का उदाहरण देते हैं। उनके अनुसार भवभूति ने "सीता को राम से मिलाया और सीता का भूमि-प्रवेश न कराकर पुत्र-प्रसव के कुछ समय बाद सीता द्वारा स्वयं को गंगा में उत्सर्ग करने की घटना रची। इन सभी नए अभिप्रायों की सृष्टि भवभूति के राम के संकट को कि 'मैं राजा के रूप में काम करू या पति के रूप में' को और अधिक तीव्र बना देते हैं और उन्हें इतना अधिक चीर देते हैं कि सीता मिलन के उपरांत भी राम को यह विश्वास नहीं होता कि सीता मिल गई है। उन्हें सुख मात्र पर विश्वास नहीं होता। वे राम को पश्चात्ताप में गलाकर राम की कठोरता की सफाई नहीं देना चाहते। मनुष्य के विवेक के स्खलन से उत्पन्न होने वाली एक करुण संभावना को उभारतें हैं कि राम जैसे व्यक्ति से भी यह स्खलन हो सकता है"।[9] अतः मिश्र मानते हैं कि ये पुनर्व्याख्याएँ सप्रयोजन होती हैं। इसलिए ये रचनाकार की चित्तवृत्ति का रागात्मक संस्कार भी होती हैं। मिथक के पात्र उसके सामने होते हैं और उन पात्रों के सुख-दुख में उसकी साझीदारी करने की प्रबल आकांक्षा भी होती है। जैसे 'महाभारत की पीड़ा' निबंध में मिश्र महाभारत के संपूर्ण पात्रों में प्रमाद से उत्पन्न दुख की बड़ी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति करते हैं, "युधिष्ठिर का दुख अपना नहीं है, उसके कारण वही अकेले नहीं है, सबसे कहीं-न-कहीं चूक हुई है।... सबने अपनी गलती कभी-न-कभी मानी भी है, पर सबने एक दंभ पाला है कि हम जो कर रहे हैं, वह उचित है, कम-से-कम हमारी स्थिति में उचित है, सब में कहीं-न-कहीं सीधी राह चलने से कतराव है। सभी के साथ ऐसा घटित होता है कि यकायक उनका नकाब उतर जाता है, सब के भीतर के झूठ को कोई-न-कोई सा व्यक्ति ही उघाड़ कर रख देता है, इसके बावजूद सब लाचार हैं, गलत-सही जिस राह पर हैं, उस पर चलते रहते हैं और महाविनाश में सब एक हो जाते हैं। महाभारत को अपने जीवन का अंग बनाकर वाचन रचना करने वाला (व्यास) देख रह है कि सभी पात्र में एक छोटा सा प्रमाद (भूल, गलती) कितने बड़े झूठ का जाल रच देता है, कोई भी पछतावा उस जाल को काट नहीं पाता। जैसे कौरव-पांडवों के उदय के मूल में ही प्रमाद है, पराशर का प्रमाद कि सत्यवती के ऊपर आसक्त होते हैं और उससे पुत्र उत्पन्न करके पुनः कुमारी होने का वरदान देकर कृतकार्य हो जाते हैं, यह देख नहीं पाते कि जिस बीज को इस कुहासे में नदी के द्वीप में रोप रहा हूँ, वह किस भयंकर अन्तर्द्वन्द्व का शिकार होगा, अशेष ज्ञान सम्पदा अर्जित करके भी कैसे कुमारी माँ के स्नेह पाश में उलझकर ऐसी कुटुम्ब रचना करेगा, जो रचना कुटुंब-भाव ही नष्ट कर देगी।"[10] इसी प्रकार मिश्र सत्यवती, शांतनु, भीष्म, युधिष्ठिर, कुंती, कर्ण, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, द्रोणाचार्य आदि के

प्रमादों का वर्णन करते हैं और अंत में द्रौपदी के उस प्रमाद का जो, इस महाविनाश का मूल कारण बनता है, उनके शब्दों में, "हाँ, कृष्ण की सखी द्रौपदी से भी, जो याज्ञसेनी है, यज्ञ द्वारा पैदा हुई है, भूल होती है, उसे ऐश्वर्य का अभिमान होता है, दुर्योधन को उजले फर्श में जल का भ्रम होता है, तो अशोभन तरीके से हँस पड़ती है, 'अंधे के पुत्र को भ्रम होना ही था।' उससे ही आग भड़क उठती है दुर्योधन के मन में। और फिर तो प्रतिहिंसा का भयानक दुश्चक्र शुरू हो जाता है।"[11] इस तरह इन पात्रों के प्रमादों की यह श्रृंखला दुख की श्रृंखला बनती है और उस भीषण युद्ध का, उस महाविनाश का कारण बनती है, जिसे इतिहास में 'महाभारत' कहा जाता है। इसी अर्थ में यह महाकाव्य दुख की सही पहचान का और इस पहचान के द्वारा संपूर्ण जीवन की पहचान का काव्य है। इस पहचान के भीतर उसे ज्ञात होता है कि उसके पाँच आंतरिक शत्रु अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्या ही सभी प्रमादों का और उनसे उत्पन्न दुखों का मूल होते हैं। इसलिए महाभारत इस संदर्भ में निरंतर सोचने का और नये सिरे से सोचने के लिए पग-पग पर उकसावा देता है, यही उसकी चरितार्थता है, यही उसकी आज के संदर्भ में प्रासंगिकता है।

इतना ही नहीं ये मिथकीय कथाएँ मनुष्य को आंतरिक स्तर पर ही नहीं बाह्य स्तर पर भी जोड़ने का कार्य करती हैं। इसे स्पष्ट करते हुए मिश्र लिखते हैं- "मॉरिशस में यहाँ (भारत) से लोग गए वे लोग गए एक भिन्न देश में गए, भिन्न जलवायु में गए।" यहाँ एक तालाब था। उनका नाम फ्रांसीसियों ने अपने मिथक के अनुसार परियों का तालाब रखा और कहानी हो गयी कि वहाँ परियाँ आती हैं, रात में नाचती हैं। भारत के मूल के लोग जब गए तो उसका नाम रखा गंगा तालाब और कहा कि शिवरात्रि के दिन यहाँ गंगा का अवतरण हुआ है। तो अपने देश की गंगा के साथ संबंध भी स्थापित हुआ और उस तालाब के साथ उनका दूसरे प्रकार का संबंध भी स्वच्छ कि वैसा बहुत कम देखने को मिलता है"।[12] इसी अर्थ में यह मिथक रचना है, यह पुराण सर्जना है, यह प्रवासी भारतीयों को अधिक समर्थ बनाती है, नई परिस्थितियों से, नए लोगों से, नए रीति-रिवाजों से एक रस होने के लिए। इसी प्रकार एक अन्य मिथक कथा है, जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने का काम करती है। भारतवर्ष में अनेकों तीर्थों, व्रतों और पर्व-त्योहारों को उल्लासपूर्वक मनाया जाता है, जिसके पीछे कोई-न-कोई विशेष भावना कार्य करती है। जैसे पुराणों में प्रत्येक तीर्थ की अपनी महता है, उनसे जुड़ी अपनी कहानी है। मिश्र के अनुसार तीर्थों की परिकल्पना नए प्रयोजनों से की गयी हैं, "यात्री के रूप में बड़े-छोटे का भेद मिटाने के लिए, सामान्य जीवन का अभ्यास कराने के लिए देश के विभिन्न भागों के तपस्वियों से जीवन के महत् उद्देश्यों के बारे में उपदेश प्राप्त करने के लिए, प्राचीन आध्यात्मिक घटनाओं से जुड़ने के लिए और स्वचित्त की परिशुद्धि के लिए"। भारत में प्रयाग को 'तीर्थराज' तथा कुंभ पर्व को 'महापर्व' कहा जाता है। जनविश्वास के अनुसार प्रयाग ऐसा तीर्थ है, जहाँ सब प्रकार की थकान दूर हो जाती है, सारे पाप प्रक्षालित हो जाते हैं, सारे ताप नष्ट हो जाते हैं और सारे अनुष्ठान सफल हो जाते हैं। इसी प्रयाग-माहात्म्य से जुड़ी एक मिथक कथा का उल्लेख करते हुए मिश्र लिखते हैं, "एक समय पर्यटन करने निकली पार्वती शिव से पूछती है, इतनी भारी भीड़ कहाँ जा रही है? शिव कहते हैं- प्रयाग जा रही है। पार्वती पूछती हैं-इतने सारे लोग एकदम मोक्ष पा जाएँगे? शिव ने कहा-नहीं इनमें से कोई विरला ही होगा जो सचमुच प्रयाग जा रहा होगा। पार्वती ने विश्वास नहीं किया। शिव कोढ़ी बनकर रास्ते में बैठ गए। दूर एक पदयात्री से रिरियाते, किसी तरह मुझे भी प्रयाग मिल जाए। मैं नहीं चल सकता, मुझे भी ले चलो, कोई भी यात्री नहीं सुनता। लाखों रास्ते से गुजर गए। अंत में एक आदमी रुका, उसने कहा, चलो मैं तुम्हे कंधे पर बिठाकर ले चलूँगा, क्योंकि वह क्या तीर्थयात्री, जो दूसरे तीर्थयात्री को तीर्थ तक पहुँचाने के लिए तैयार न हो। पार्वती को प्रतीति हो गयी।"[13] अतः प्रयाग धाम में त्रिवेणी के

तट पर संगम-स्नान का गहरा अर्थ है। केवल तारने वाली इस अनंत जलरशि में बाहर से डुबकी नहीं लगानी है बल्कि अंतर्मन को भी भिगोना है, ताकि भीतर-बाहर की शुचिता प्राप्त हो जाए, अपने पराए का भेद न रहे तथा आदमी आदमी से जुड़ा रहे। इसी भावना ने भारत के भिन्न-भिन्न भागों में निवास करने वाले जन-सामान्य को एकसूत्र में जोड़ा है और पूरी भारतभूमि को एक विशाल यज्ञवेदी बना दिया है और यज्ञवेदी से उठती पवित्र सुगंधियों ने संपूर्ण विश्व को सुवासित कर दिया है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आलोक में पूर्णतया स्पष्ट है कि मिश्र ने इन मिथकों की अतल गहराइयों में जाकर जीवन की गूढ़ सच्चाइयों का साक्षात्कार किया है। इन्होने जिस भी मिथकीय प्रसंग को उठाया है, उसमें अपनी मौलिक उद्धावना का समावेश करके समय-संदर्भ की स्थिति, मनोदशा, वैचारिकता और संवेदना के अनुरूप सार्थक भी किया है और अपनी कल्पना से सजा-सँवारकर अलग ही सौंदर्य प्रदान किया है। इनके द्वारा विवेचित मिथकों में सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना एक साथ देखने को मिलती है तथा यह सर्जनात्मक इतिहास के रूप में इनके निबंधों में उभर कर आए हैं। पुरातन चिंतन का संक्रमण जब मिश्र के नूतन चिंतन से होता है तो अतीत और वर्तमान एक ही बिंदु पर आकर एकीकृत हो जाते हैं और इस प्रक्रिया में एक नई सोच, नई दृष्टि और नई शिक्षा के साथ ये मिथक नई संभावना के रूप में उभरते हैं। संक्षेप में कहें तो ऐसा लगता है कि भारतीय संस्कृति के इस वरद् पुत्र को विभिन्न पौराणिक देवी-देवताओं का भरपूर आशीर्वाद प्राप्त हुआ है, इसलिए इन्होंने इस मिथकीय रसामृत को अनुभूति के रूप में स्वयं भी प्रसाद स्वरूप ग्रहण किया है तथा सार्थक एवं लालित्यपूर्ण अभिवयक्ति के रूप में इसका नवनीत सुधी पाठक वृंद को भी चखाया है।

**संदर्भ सूची:**

1 हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली (भाग-9) पृष्ठ-37, 38
2 नगेन्द्र ग्रंथावली भाग-३, पृष्ठ-237-240
3 शशि भूषण, शितांशु', 'मनोवैज्ञानिक एवं पौराणिक आलोचना, पृष्ठ-134
4 विद्यानिवास मिश्र, तुम चंदन हम पानी, पृष्ठ-5
5 विद्या निवास किया, जामुदा के नंदन, पृष्ठ-129
6 वही, पृष्ठ-130
7 वही, पृष्ठ-129-130
8 कुबेरनाथ राय, दृष्टि अभिसार, पृष्ठ-36
9 कुबेरनाथ राय, कामधेनु, पृष्ठ-130
10 हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली (भाग-1), पृष्ठ-251
11 विद्यानिवास मिश्र, अनछुए बिंदु, पृष्ठ-69
12 विद्यानिवास मिश्र, महाभारत का काव्यार्य, पृष्ठ-48
13 हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-1, पृष्ठ-98-173

**संदर्भ ग्रंथ:-**

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-१ (निबंध संग्रह 1) मुकुंद द्विवेदी (सम्पादक), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2007 संस्करण
नगेन्द्र ग्रंथावली (खंड-1-10), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1996 संस्करण
शशि भूषण शितांशु, मनोवैज्ञानिक और मिथकीय आलोचना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 2004
विद्यानिवास मिश्र, 'तुम चंदन हम पानी', नेशनल पब्लिशिंग हाउस 2000
विद्यानिवास मिश्र जसुदा के नंदन प्रवीण प्रकाशन 2003
कुबेरनाथ राय, 'दृष्टि अभिसार' नेश्नल पब्लिशिंग हाउस 1984
कुबेरनाथ राय, 'कामधेनु' नेश्नल पब्लिशिंग हाउस 1990
विद्यानिवास मित्र, 'अनछुए बिंदु', किताबघर प्रकाशन 2008
विद्यानिवास, 'महाभारत का काव्यार्थ', नेशनल पब्लिशिंग हाउस 2000